

प्रवचन-१८६, गाथा-१५९, शनिवार, आषाढ शुक्ल ७, दिनांक १९-०७-१९८०

शुद्धोपयोग अधिकार। पहले तो ऐसा आया कि पराश्रित व्यवहार। भगवान को केवलज्ञान होता है, वह पर को जानता है - ऐसा कहना, वह व्यवहार है, क्योंकि पर में तन्मय नहीं होते। लोकालोक को जानते हुए लोकालोक के साथ तन्मय नहीं है; तन्मय तो अपने ज्ञान-दर्शन के साथ है; इसलिए लोकालोक को जानते हैं, वह व्यवहार है। यह पहले आया था-पराश्रित। आहाहा! ऐसी बात। अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र को अपने को स्वयं जानता है। यह एक अपेक्षा से व्यवहार है। स्वयं वस्तु और अपना धर्म, उसे जानना, इस अपेक्षा से व्यवहार है। और दूसरी अपेक्षा से व्यवहार है। यहाँ देखो!

‘स्वाश्रितो निश्चयः ( निश्चय स्वाश्रित है )’ ऐसा ( शास्त्र का ) वचन होने से, ( ज्ञान को ) सतत निरुपराग निरंजन स्वभाव में लीनता के कारण... आहाहा! केवलज्ञान अपने में लीनता है। केवलज्ञान पर को जानता है ( परन्तु ) पर में लीन-तन्मय नहीं है। आहाहा! अब ऐसा जानना। कारण कि निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही। क्या कहते हैं? निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही। यह पर को जानना और अपने को जानना, वह अपना है। कहीं पर को जाने, वह कहीं पर नहीं है। इस अपेक्षा से स्व-पर को जानना, वह निश्चय है। यह तो पर को जाने-ऐसा कहना, वह व्यवहार है, परन्तु पर सम्बन्धी अपना ज्ञान और निश्चय सम्बन्धी अपना ज्ञान, उसे जाने, वह निश्चय है। समझ में आया? आहाहा! विषय चला न हो, इसलिए ( कठिन लगता है )। यहाँ तो निश्चय पक्ष से... यहाँ तक आया न? निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही। आहाहा!

( वह इस प्रकार : ) सहज ज्ञान आत्मा से संज्ञा, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा से भिन्न नाम तथा भिन्न लक्षण से... अपना ज्ञान, उसका लक्षण जानना है। आत्मा तो सर्व को जानता है और यह तो एक जानना-देखना, एक-एक गुण का लक्षण है। इस गुण के लक्षण से आत्मा से संज्ञा लक्षण से भिन्न कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! अब ऐसा ( समझने के लिये ) कहाँ निवृत्ति? आत्मा अपने को जानता है, यह स्व-परप्रकाशक है, वह निश्चय है। वह तो पर को प्रकाशित करता है - ऐसा कहना व्यवहार है। बाकी पर और स्व दो का प्रकाशक आत्मा निश्चय से अपने में है।

यह जीवशक्ति में (सर्वज्ञ शक्ति में) आया है न? भाई! सर्व को जाने, वह आत्मज्ञ। ४७ शक्तियाँ। वह आत्मज्ञान की शक्ति आयी है। वहाँ ऐसा कहा है कि ज्ञान सर्व को जानता है, परन्तु है आत्मज्ञान। वह पर का ज्ञान नहीं है। उस आत्मा के ज्ञान में स्व-पर का जानना आ गया। उसमें पर की अपेक्षा लेना, वह व्यवहार हो गया। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म! और निश्चय से स्वयं अपने को जाने, वह निश्चय है। परन्तु अपने एक-एक ज्ञान-दर्शन-आनन्द के भिन्न-भिन्न लक्षण हैं, तो भी उन्हें जाने, वह भी निश्चय है। भाषा तो सादी परन्तु अब... आहाहा! उस पर के साथ क्या सम्बन्ध है? वह तो जड़, वाणी, मन, पुण्य-पाप, यह सब भिन्न है। अन्दर वस्तु चैतन्य प्रभु अनन्त गुण का धाम अत्यन्त भिन्न है। अब उस आत्मा को निश्चय से स्व-परप्रकाशक जानने का अपना स्वभाव है। उसमें अकेला पर को जानने का कहना, वह व्यवहार (हुआ)। बाकी पर को और स्व को जानने का स्वभाव अपना है, इसलिए निश्चय से अपने को ही जानता है, पर को नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ निश्चय और व्यवहार। उस क्रियाकाण्ड में निश्चय और व्यवहार और कहाँ गया। दया, दान, भक्ति, व्यवहार, वह पुण्य। वह धर्म नहीं। और उससे भिन्न आत्मा का आश्रय करना, वह धर्म। अब वह धर्म और पुण्य निश्चय-व्यवहार अलग, यह अलग चीज़। आहाहा! यह तो पर को जाने, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। परन्तु वह पर और स्व को जानता है, वह अपनी चीज़ अपने में है। अपने को जानता है तो स्व-परप्रकाशक शक्ति अपनी है। निश्चय से अपने को ही जानता है। व्यवहार से (जानता है) - ऐसा नहीं। और उसके ज्ञान-दर्शन को जानना, ऐसे आत्मा से ज्ञान-दर्शनादि के लक्षण भिन्न, नाम भिन्न, परन्तु वस्तु अभिन्न है। निश्चय से अपने धर्म को भी जानता है। आहाहा! व्यवहार से ऐसा कहा जाता है कि गुणी का गुण भिन्न है, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि गुण का नाम भले भिन्न-भिन्न हो परन्तु है आत्मा के अन्दर। उस आत्मा को ही जानता है। निश्चय से अपने को ही जानता है। आहाहा! ऐसी बात के लिये निवृत्ति कहाँ? आहाहा!

इसमें क्या कहना है?—कि पर के ऊपर लक्ष्य करना नहीं। स्व-पर प्रकाशक है, इस कारण से पर के ऊपर लक्ष्य करना, यह इसमें आता नहीं। वह तो स्व-परप्रकाशक अपना स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? स्व-परप्रकाशक में पर आया तो अकेला

पर को जाने, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। परन्तु स्व और पर को जानने का तो अपना स्वभाव है। पर को जानना, वह कहीं पर का स्वभाव नहीं। पर को जानना, वह पर का स्वभाव नहीं। पर को जानने का और स्व को जानने का स्वभाव अपना है। निश्चय से स्व-परप्रकाशक अपना स्वभाव है। आहाहा! ऐसी बात है। यह शुद्धोपयोग अधिकार। यहाँ तक चला है।

निश्चयपक्ष से भी स्व-परप्रकाशकपना है ही। यहाँ तक आया है। निश्चयपक्ष से भी... है? अपने को ही जानता है। वह पर को जानता है, ऐसा कहना, वह अपेक्षित व्यवहार है, परन्तु पर सम्बन्धी और अपने सम्बन्धी जो ज्ञान है, वह अपना है। स्वयं में अपने को जानता है। पर को जानता है -ऐसा नहीं। आहाहा! अब इसमें व्यापारी को निवृत्ति (नहीं मिलती)। ऐसा आत्मा... स्वतन्त्र आत्मा बताते हैं।

भाई! तू पर को जानता है, ऐसा है नहीं। पर का करना और पर को छूना, वह तो है ही नहीं। तीन काल में है नहीं। आहाहा! पर को जानता है - ऐसा व्यवहार कहने में आता है। परन्तु पर को जानना, वह ज्ञान अपना है। अपने ज्ञान में स्व-पर जानने की शक्ति अपनी है, तो निश्चय से स्व-पर प्रकाशक अपना है। समझ में आया? आहाहा! यह कहीं हीरा के काम में ऐसा कुछ आता नहीं। उसमें क्या काम आवे वहाँ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तेरी चीज़ में जो भिन्न-भिन्न धर्म हैं न? गुण भिन्न-भिन्न है न? वे गुण के नाम भले भिन्न हो, तथापि गुण और गुणी निश्चय से तो एक ही है। आहाहा! समझ में आया? भिन्न है नहीं, ऐसा जहाँ लें तो ऐसा लिया जाता है कि गुणी आत्मा और गुण, ऐसा यदि भेद करेगा तो विकल्प होगा। वह अलग चीज़ है, वह अलग चीज़ है। आहाहा! यहाँ तो स्वयं और अपना धर्म अर्थात् गुण, दोनों को जाने, वह निश्चय है। आहाहा! यहाँ नजर करनी है; बाहर नजर नहीं करनी है। पर को जाने, इसलिए पर के ऊपर लक्ष्य करना, पर के ऊपर उपयोग जाए तो पर को जान सके, ऐसा है नहीं। आहाहा! अपने ऊपर लक्ष्य करने से स्व और पर दोनों को जानने का निश्चय से अपना स्वभाव है। अतः निश्चयनय से भी अपने को ही प्रकाशित करता है। पर की बात नहीं है। आहाहा! अब यहाँ तक जाना।

अभी तो पूरे दिन पर का कर सकता हूँ, करता हूँ, यह किया... और यह किया...

और यह किया... और मैं नहीं होता तो नहीं होता। यह दो दिन मुझे बाहर जाना पड़ा, उसमें पीछे से यह सब अव्यवस्थित हुआ। शोर मचाता है न ऐसे? यहाँ काम बराबर न हो, स्वयं कहीं बाहर गया हो। बाहर गया हो। इन दो दिन में यह बराबर ठीक नहीं चला, इतना काम करना चाहिए, वह काम इतना क्यों हुआ नहीं? आहाहा! कौन करे? आहाहा! यहाँ उपस्थिति होवे तो अधिक काम हो और उपस्थिति बिना थोड़ा होता है, ऐसी कोई चीज़ है नहीं। आहाहा! जिस समय में जिस द्रव्य की जो पर्याय होनेवाली हो, वह होती है। उसे कोई काल या पर की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वभाव है, प्रभु! तुझे नजर तो द्रव्य पर करनी है। भले वह पर को जानने का स्वभाव रखे, परन्तु पर में उपयोग नहीं लगाना। आहाहा! यहाँ यह कहना है।

स्व-पर को जानने का उपयोग का स्वभाव है, परन्तु पर को जाने, इसलिए पर के ऊपर उपयोग देना पड़े, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा धर्म। क्या कहा? एक तो पर को जाने, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। व्यवहार से कहा जाता है, क्योंकि जानने में आवे, उसमें वह चीज़ निमित्त है, इसलिए उसे व्यवहार कहते हैं। परन्तु पर को जाने, वह पर है; इसलिए पर को जानता है - ऐसा नहीं है। अपना स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, इसलिए स्व और पर को अपने में रहकर अपने कारण से जानता-देखता है। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। दुनिया को कठिन पड़ता है। प्रभु अत्यन्त निवृत्तस्वरूप है।

सैंतालीस शक्ति में तो लिया है कि आत्मा सर्वज्ञानमय, वह आत्मज्ञानमय है। शब्द ऐसे लिये हैं न? आत्मा सर्व को जानता है, परन्तु इसका अर्थ यह है कि वह आत्मज्ञानमय है। वह पर को जाने, इसलिए पर का ज्ञान है - ऐसा नहीं है। पर का और स्व का ज्ञान अपने में अपने से हुआ है, तो वह स्व और पर का ज्ञान, वह आत्मज्ञानमय है। स्व और पर का ज्ञान, वह आत्मज्ञानमय है। स्व-पर का ज्ञान, परसन्मुख के झुकाव के कारण पर का है - ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसी धर्म की बात। निवृत्ति नहीं मिलती। वह एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय करते थे, सामायिक हुई सवेरे में; शाम को प्रतिक्रमण। पर्यूषण आदि हों, धर्म के दिन हों, इसलिए हो गया धर्म।

अरे प्रभु! तेरी चीज़ इतनी कीमती है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण से भरपूर (भगवान है)। उस प्रत्येक गुण के नाम, लक्षण भले भिन्न हो, तथापि वह स्व-प्रकाशक

ही है; परप्रकाशक नहीं। आत्मा और गुण, दो भिन्न पड़े और गुण पर तथा आत्मा स्व—  
ऐसे भिन्न नहीं है। जब विचार करना हो, तब गुणी आत्मा और गुण ज्ञान-दर्शन, ऐसे भेद  
करने से विकल्प उत्पन्न होता है। यह तो रागी प्राणी है, इसलिए (होता है)। परन्तु वस्तु  
का स्वरूप देखो तो अपने धर्म को भी जाने और अपने को भी जाने, दोनों निश्चय है।

अपने से भिन्न धर्म, ऐसा लक्षण आया कि आत्मा का नाम ज्ञान। आत्मा का नाम  
आत्मा और ज्ञान का नाम ज्ञान। आत्मा का नाम आत्मा, समकित का नाम समकित। ऐसे  
नाम और लक्षण भेद पड़े, इसलिए व्यवहार है – ऐसा नहीं है। ऐसी बातें हैं। यह किस  
प्रकार का धर्म होगा? वीतराग का धर्म ऐसा है, भाई! आहाहा! किस अपेक्षा से कहा?  
वह यहाँ अन्त में कहा। आहाहा!

तीसरी लाईन। ( वह इस प्रकार : ) सहज ज्ञान आत्मा से संज्ञा, लक्षण और  
प्रयोजन की अपेक्षा से भिन्न... ज्ञान, आत्मा से प्रयोजन अपेक्षा से भिन्न है। आत्मा सर्व  
गुण का आश्रय है। ज्ञान एक गुण है। ज्ञान का जानन स्वभाव है। आत्मा का अनन्त गुण  
का स्वभाव है। आत्मा का नाम आत्मा है। ज्ञान का नाम ज्ञान है। नामभेद भी है। आहाहा!  
है? सहज ज्ञान आत्मा से संज्ञा,... संज्ञा अर्थात् नाम। नामभेद भी है। आत्मा को आत्मा  
कहते हैं और ज्ञान को ज्ञान कहते हैं, ऐसा नामभेद है। संज्ञा, संज्ञा है न? उस संज्ञा का  
अर्थ नामभेद है। कभी पढ़ा न हो तो खबर भी नहीं हो। पढ़ने को कहाँ निवृत्त है? पुस्तक  
तो होगी, रखी होगी। आहाहा! बहुत सूक्ष्म वस्तु, बापू! अन्दर में गहरे उतरे, तब कुछ  
पकड़ में आता है। ऊपर-ऊपर से कुछ पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, सहज ज्ञान आत्मा से संज्ञा, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा से भिन्न  
नाम... है। भिन्न नाम तथा भिन्न लक्षण से ( तथा भिन्न प्रयोजन से )... ज्ञान का प्रयोजन  
जानना और आत्मा का प्रयोजन अनन्त गुण को जानना। आहाहा! ( तथा भिन्न प्रयोजन  
से ) जाना जाता है, तथापि वस्तुवृत्ति से ( अखण्ड वस्तु की अपेक्षा से ) भिन्न नहीं है;...  
आहाहा! यह ज्ञान कहीं शास्त्र का ज्ञान नहीं है, कोई धारणा का यह ज्ञान नहीं है। आहाहा!  
यह ज्ञान तो उसका स्वभाव है। तो भी स्वभाव और स्वभाववान, अथवा ज्ञान, जानना और  
ज्ञान, नाम तथा आत्मा का नाम आत्मा, ऐसा संज्ञाभेद होने पर भी... आहाहा! और लक्षणभेद  
है। ज्ञान का जानना ( लक्षण ) और आत्मा का लक्षण ज्ञान है। आहाहा! लक्षण और  
प्रयोजनभेद है। ज्ञान का एक को ही जानना, वह प्रयोजन है; आत्मा का सर्व को जानना

प्रयोजन है। क्या कहते हैं ? आत्मा और आत्मा का गुण। इन तीन में संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन भिन्न होने पर भी स्व है। परप्रकाशक नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ज्ञान के लिये ज्ञान स्व और दूसरे गुण पर कहे जाते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह अलग बात है, वह तो जानने के लिये है। ज्ञान स्वयं अपने में है। निश्चय से स्वयं ज्ञान है और ज्ञान दूसरे को जाने, यह भी निश्चय से। यह निश्चय है। यह आता है, देखो!

( तथा भिन्न प्रयोजन से ) जाना जाता है, तथापि वस्तुवृत्ति से ( अखण्ड वस्तु की अपेक्षा से ) भिन्न नहीं है;... वस्तु अखण्डरूप से तो ज्ञान, वह आत्मा और आत्मा, वह ज्ञान। समकित, वह आत्मा और आत्मा, वह समकित। आनन्द, वह आत्मा और आत्मा, वह आनन्द ( -ऐसे ) अभिन्न वस्तु है। जरा सूक्ष्म है, भाई! कभी अभ्यास किया नहीं। इसलिए यह तो अन्तर में ठेठ की बात की। आहाहा! यह तो नियमसार आचार्य महाराज कहते हैं, मैंने मेरे लिये बनाया है। आहाहा! कठिन काम है। अपूर्व काम है, ऐसा लो। पूर्व में कभी नहीं निर्णय की - ऐसी बात है। आहाहा! आचार्य ऐसा कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है। आहाहा! उसमें यह आया है।

आत्मा, नाम आत्मा। ज्ञान के गुण का नाम ज्ञान। ऐसे समकित का प्रतीति प्रयोजन, आत्मा का सर्व गुण का प्रयोजन। ऐसे भिन्न-भिन्न होने पर भी निश्चय से एक ही है। ऐसे देखो तो एक गुण और गुणी का भिन्न विचार करे तो विकल्प उठता है। वह अलग वस्तु है। क्या कहा ? आत्मा और यह ज्ञान, ऐसे गुण-गुणी का विचार करने से विकल्प उठता है। जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है, धर्म की पहली सीढ़ी प्राप्त करना हो, उसे आत्मा ज्ञान और आत्मा ज्ञानस्वरूप, ऐसा भेद करना नहीं। ऐसा भेद करने जाएगा तो राग होगा। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि यह भेद है, वह सब एक ही है। भले नाम, लक्षण और प्रयोजन, गुण और गुणी में तीनों में अन्तर है, तो भी वस्तु निश्चय से अपनी है। आहाहा! ऐसी बात! धर्म के नाम की ऐसी बातें! बापू! यह वस्तु बताते हैं, यह धर्म और धर्मी वस्तु है। धर्मी है, वह एक है और धर्म उसके गुण हैं, वे अनन्त हैं। वह अनन्त और एक—ऐसे दो नाम भले भिन्न पड़े, तो भी वह अनन्त एकरूप ही है और एक अनन्तरूप ही है। निश्चय से तो स्वस्वरूप से ही है। आहाहा!

मुमुक्षु - अनुभव बिना यह बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री - वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! अनुभव करे या न करे, अनुभव होकर फिर धन्धे के विकल्प में भले हो, परन्तु वस्तु तो ऐसी है। आहाहा!

पहले यह आया था 'पराश्रितो व्यवहारः' यहाँ (आया) 'स्वाश्रितो निश्चयः'। 'स्वाश्रितो निश्चयः' में पर का ज्ञान, वह पर में - व्यवहार में गया। और दूसरे प्रकार से पर का ज्ञान अपना है, तो निश्चय में गया। आहाहा! ऐसी बात है। जरा सूक्ष्म है।

इस कारण से यह ( सहजज्ञान ) आत्मगत ( आत्मा में स्थित ) दर्शन, सुख, चारित्र आदि को जानता है... ज्ञान अपने गुण को जानता है, यह निश्चय है। ज्ञान अपने गुण को जानता है, यह भी निश्चय है। आहाहा! गुणभेद है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुणभेद है। भेद है तो पर को जानता है, यह व्यवहार है अपना गुण - ऐसा नहीं। पर को जाने, यह व्यवहार है। अपने गुण और अपने गुण के अतिरिक्त दूसरे गुण, इन सबको जानना निश्चय है। आहाहा!

ऐसी निवृत्ति कब थी ? धन्धे के कारण निवृत्ति ले नहीं। लड़के-बड़के ठीक से काम करे, फिर हम निवृत्ति ले लेंगे। छोड़ दिया अर्थात् क्या ?—कि लड़के करते हैं। यह हमारे वहाँ भी ऐसा था न! सब घर-घर में ऐसा ही है। आहाहा! हसमुख तो ऐसा कहता है कि यह लड़का ठीक से काम पर लग जाए तो अपने... ऐसे का ऐसा मर गया सन्निपात करके। आहाहा! सन्निपात हो गया। दो लाख की आमदनी, दस लाख रुपये रोकड़। गया कहीं। अरे रे! किसी की कहाँ पड़ी है ? आहाहा!

निश्चय और व्यवहार दो को समझाते हैं। जो पर को जाने, वह व्यवहार कहा, इसलिए वह कहीं पर का ज्ञान है - ऐसा नहीं है। वह ज्ञान तो अपना ही है, परन्तु अपने ज्ञान में पर ज्ञात होते हैं, इस अपेक्षा से पर का कहा। बाकी पर का और स्व का ज्ञान निश्चय तो अपना ही है। और अनन्त धर्म के नाम-लक्षण भिन्न हैं और द्रव्य का नाम - लक्षण भिन्न है। ऐसे भिन्न होने पर भी निश्चय से अपने को ही जानता है। आहाहा! भिन्न है, इसलिए व्यवहार है; यहाँ यह नहीं, तो भी वस्तु भिन्न नहीं।

इस कारण से यह ( सहजज्ञान ) आत्मगत ( आत्मा में स्थित ) दर्शन, सुख, चारित्र आदि को जानता है और स्वात्मा को—कारणपरमात्मा के स्वरूप को—भी

जानता है। देखो! स्व-आश्रय की बात चलती है। ऊपर लिखा है न, पहली लाईन में? 'स्वाश्रितो निश्चयः'। उसका यह अर्थ चलता है। अपने धर्म को जाने और अपने को जाने, वह सब निश्चय है। आहाहा!

पर का करना, वह तो कहीं रह गया। पर को तो स्पर्श भी नहीं करता। आहाहा! शरीर को कभी अनन्त काल में स्पर्श नहीं किया। कैसे जँचे? दाल, भात, रोटी, सब्जी, मोसम्मी, मेसूर को कभी तीन काल में आत्मा ने स्पर्श नहीं किया। उन्हें स्पर्श भी नहीं किया, उन्हें स्पर्श ही नहीं करता क्योंकि एक द्रव्य और दूसरे द्रव्य के बीच अभाव है, अत्यन्त अभाव है, उसमें एक-दूसरे को स्पर्श... स्पर्श कहाँ से करे? आहाहा! यह बात है। एक थप्पड़ ऐसे मारी, तो कहते हैं कि थप्पड़ ने गाल का स्पर्श ही नहीं किया।

**मुमुक्षु** : गाल लाल हो गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : गाल तो उसके कारण से हुआ है। उसके कारण से लाल होता है। यह तो उसे छूता ही नहीं। ऐसी बात है।

द्रव्य अनन्त हैं न? वेदान्त की जैसे सर्वव्यापक मानता है, एकान्त मिथ्यादृष्टि (मानता है) - ऐसा नहीं। वेदान्त एक सर्वव्यापक मानता है, पर्याय को नहीं मानता, वह तो मिथ्यादृष्टि है। एक बाबा था तुम्हारे यहाँ। (संवत्) १९९९ के वर्ष में। वहाँ तुम्हारा गाँव। आहाहा! 'ध्रांगध्रा' का था। एक-एक करता था, बस। सुने। एक.. एक.. क्या एक-एक? सब एक ही है। सुनने बैठा। एक-एक किया करे। (संवत्) १९९० के वर्ष की बात है। १९९० के वर्ष। ३६-३७ वर्ष हुए। बाबा था। व्याख्यान में आवे। आहाहा! ऐ... तू एक-एक करता है। एक नहीं मानता और एक मानता है, वहाँ ही दो हो गये। एक मानता नहीं और एक मानता है। तू कहता है कि हमारे एक मानना है। तू पहले एक मानता नहीं था और दूसरा एक मानता नहीं; तो नहीं मानता है और (अब) मानता है तो दो भेद हो गये। परन्तु विचार करने का अवकाश भी कहाँ है? निवृत्ति नहीं होती। आहाहा! यहाँ यह पहली सूक्ष्म बात ली है।

**मुमुक्षु** : अपने और अपने में निश्चय-व्यवहार किस प्रकार घटित होते हैं?

**पूज्य गुरुदेवश्री** : व्यवहार और निश्चय स्वयं अपने को जानता है। यह निश्चय है।

**मुमुक्षु** : ज्ञानगुण को जाने, वह व्यवहार और ध्येय को जाने, वह निश्चय?



**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं। प्रत्येक गुण अपना निश्चय है। प्रत्येक गुण अपना निश्चय है। अभी यह है। प्रत्येक गुण के नामभेद भिन्न होने पर भी और आत्मा का नाम तथा लक्षण भिन्न होने पर भी प्रत्येक वस्तु निश्चय से स्वयं की है। आहाहा! अभी यह बात नहीं है। यह बात आवे, तब अलग। क्या आवे तब? एक आत्मा ज्ञानस्वरूपी है, यह भी भेद पड़ा। यह भी विकल्प-राग है। अरे! ज्ञायक आत्मा है, ऐसा आया तो भी राग है। उसमें आत्मा नहीं आया। राग आया। वह दूसरी बात है। यहाँ तो जानने-देखने की बात चलती है। वहाँ तो आचरण करने की बात चलती है। आहाहा! अब ऐसा समझे। वह सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण करके मर जाए बेचारा ऐसे का ऐसा। पूरी जिन्दगी चली जाती है। आत्मा को कुछ (लाभ नहीं है)। आहाहा! चौरासी के अवतार...

**मुमुक्षु :** गुण, गुणी के आश्रित है; इसलिए स्व-आश्रित ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आश्रित नहीं। गुण, गुणी के आश्रित है, यह व्यवहार। गुणी भी स्वतन्त्र है और गुण भी स्वतन्त्र है। बहुत सूक्ष्म बात है।

अभी जो चलता है, उस अपेक्षा से गुणी और गुण दोनों एक स्वरूप है। आहाहा! क्योंकि भले दोनों के धर्म नाम, लक्षण, प्रयोजन भिन्न हैं, तथापि वस्तु एक है। आहाहा! और जब ध्यान और आत्मा की निर्विकल्प की बात चलती हो, तब तो आत्मा ज्ञायक है। जानना-देखना तो ठीक, परन्तु वह ज्ञायक है, यह भी विकल्प है। (समयसार, गाथा) १४२-१४३ कर्ता-कर्म (अधिकार)। आत्मा ज्ञायक है, शुद्ध है, एकरूप है, ब्रह्मरूप है, आनन्दरूप है - यह भी भेद हुआ, विकल्प हुआ। इससे प्राप्त नहीं होता। इससे आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। आहाहा! अरे! प्रभु! तुझे कहाँ जाना है? आहाहा! तेरा घर है, वहाँ जाना है न? तेरा घर नहीं, वहाँ भटकता है। आहाहा! राग और द्वेष, पुण्य और पाप, तथा दया और दान... आहाहा! जो तेरी चीज़ में त्रिकाल में है नहीं। आहाहा! यहाँ तो त्रिकाल में है और अपने में है, वह सब यहाँ निश्चय में लेना है। आहाहा! और 'कर्ता-कर्म अधिकार' में तो मैं ज्ञायक, मैं शुद्ध, मैं एक, मैं बुद्ध, मैं अखण्ड—ऐसा विकल्प करे तो राग है, संसार है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** वह तो अभेद का पक्ष है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पक्ष हुआ, नयपक्ष हुआ। राग आया न! यहाँ तो जानने की

अपेक्षा से बात चलती है। जानने में कहीं कोई विकल्प को अवकाश नहीं है। पर को जानने पर, 'पर को जानना'—ऐसा कहना, वह व्यवहार है, इतना। पर को जानने पर ज्ञान पर का हो जाता है और पर है, इसलिए पर को जानता है, पर है; इसलिए पर को जानता है - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! तथा पर को जानने के लिये पर का उपयोग लगाना पड़ता है (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! यह तो केवली की बात है, हों! निचले छद्मस्थ को तो पर को जानने में पर का उपयोग करे, तब बन्ध है, बन्ध का कारण है। आहाहा! नीचे रागी प्राणी है। रागी प्राणी एक में भेद करेगा तो राग होगा। और जहाँ केवलज्ञान, केवलदर्शन की बात चलती है, वहाँ अनन्त गुण का भेद भी एक समय में आत्मा जानता है। जानता है, वह निश्चय है। आहाहा! इसमें कितना याद रखना? घीया! वहाँ अलग चलता है। सोनगढ़ में तो कहीं अलग चीज़ चलती है। अलग नहीं, यह तेरे घर की ही है। आहाहा! तेरे घर में ही यह सब बसा हुआ है। घर में यह रहा हुआ है, परन्तु कभी देखने को, सुनने को निवृत्ति नहीं हेता। फिर समझ में तो कैसे आये? आहाहा!

यहाँ कहते हैं दर्शन, सुख, चारित्र आदि को जानता है और स्वात्मा को—कारणपरमात्मा के स्वरूप को—भी जानता है। देखो! आया? दूसरे पेरोग्राफ की अन्तिम लाईन। पर को भी जानता है और अपने को भी जानता है, इसलिए निश्चय है। आया या नहीं? आत्मगत ( आत्मा में स्थित ) दर्शन, सुख, चारित्र आदि को जानता है और स्वात्मा को—कारणपरमात्मा के स्वरूप को—भी... अपने में अपने गुण को जानता है और गुणी को भी जानता है। बस! वहाँ भेद पाड़ना नहीं। आहाहा! जानने का स्वभाव दोनों को जाने। आहाहा!

कोष्टक में (लिखा है)। ( सहजज्ञान स्वात्मा को तो स्वाश्रित निश्चयनय से जानता ही है और इस प्रकार स्वात्मा को जानने पर उसके समस्त गुण भी ज्ञात हो ही जाते हैं। अब सहजज्ञान ने जो यह जाना, उसमें भेद-अपेक्षा से देखें तो सहजज्ञान के लिए ज्ञान ही स्व है और उसके अतिरिक्त अन्य सब—दर्शन, सुख आदि—पर है; इसलिए इस अपेक्षा से ऐसा सिद्ध हुआ कि निश्चयपक्ष से भी ज्ञान स्व को तथा पर को जानता है। ) पर को अर्थात् अपने गुण के अलावा। ( बाहरी ) पर नहीं। आहाहा! निश्चय से भी अपने को और अपने दूसरे धर्मों को जानता है। ऐसा निश्चयनय का पक्ष है। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! यह ऊपर कहा, उसकी बात की है। उसका स्पष्ट किया है।

निश्चयपक्ष से भी ज्ञान स्व को तथा पर को जानता है। निश्चयपक्ष से भी। ऐसा नहीं कि पर को जाने, वह व्यवहार है और स्व को जाने, वह निश्चय है। आहाहा! यह पर तो अपने गुण के अतिरिक्त के गुण पर लेना है और वह पर तो अपने अतिरिक्त परवस्तु लेना है। आहाहा! धीमे-धीमे समझना। सूक्ष्म धर्म है। अनन्त काल हुआ।

आठ-आठ वर्ष के, दस-दस वर्ष के लड़के चले जाते हैं। खबर भी नहीं पड़ती। यह कहा न, वह लड़का मर जाए। हीराभाई के लड़के का लड़का और उसका लड़का। हम जिस मकान में रहते थे वह। दस वर्ष का। आधे घण्टे में ( मर गया )। यहाँ कुछ होता है। आधे घण्टे में। रोग का कुछ नाम था। रोग होगा ऐसा कोई। स्थिति पूरी होवे तो कुछ होवे तो सही न? वह कुछ हुआ अन्दर, बस! दूसरा कुछ नहीं होता। रोग-बोग कुछ नहीं। ऐसा कुछ अन्दर में एकदम जलने लगा और श्वास बन्द हो गयी। देह छूट गयी। आहाहा!

यह मानो हम जवान हैं। सब ध्यान रखूँगा, इन्द्रियों का, शरीर का, खाने-पीने का। धूल भी ध्यान नहीं रहता। आहाहा! पर के लिये ध्यान? यहाँ तो पर को जानना, उसे अभी व्यवहार कहते हैं। आहाहा! पर का कुछ करना और पर को छूना तथा पर में फेरफार करना, यह प्रश्न तो एकदम झूठा है। आहाहा! तू तुझमें जा, प्रभु! ऐसा कहते हैं। तेरे गुणभेद भले हों, तो भी गुण तेरे हैं। वे गुण कोई राग, या विकार या शरीर नहीं है। यह शरीर, वाणी, विकार परवस्तु है। आहाहा!

किसी भी गुण से उठा कि आत्मा आनन्दरूपी है, तो भी आनन्द और आत्मा अभेद है। ज्ञान आत्मा है, तो ज्ञान और आत्मा अभेद है। समकित आता है। आत्मा, वह समकित अभेद है। आहाहा! तेरी नजर बाहर से तो उठा ले, राग से तो उठा ले, परन्तु गुणभेद है, वह भले हो, उसका ज्ञान करने में कोई दिक्कत नहीं है। आहाहा! गुणभेद को लक्ष्य में नहीं लेना। रागी प्राणी है इसलिए। गुणभेद कहीं राग का कारण नहीं है। गुणभेद राग का कारण नहीं है, परन्तु रागी है, इसलिए गुणभेद राग का कारण है। यदि गुणभेद राग का कारण होवे तो केवली तो तीन काल-तीन लोक को जानते हैं। वे अपने अनन्त धर्मों को अपने जानते हैं। दोनों जानते हैं, वह व्यवहार है। आहाहा!

यहाँ बात ले गये, जानने तक। आहाहा! पर को जानना, वह व्यवहार है। पर, वे अपने ज्ञान के अतिरिक्त अनन्त गुण, उन्हें जानना, वह व्यवहार नहीं। समझ में आया? पर

कहने में भी दो प्रकार हैं—एक अपना आत्मा, ज्ञान वह पर है। आत्मा का नाम और ज्ञान। वह पर, ऐसा। और रागादि, शरीरादि पर हैं। परन्तु राग और शरीर तो पृथक् - अत्यन्त भिन्न हैं और अपना ज्ञान तथा आत्मा, वह नामभेद होने पर भी, लक्षणभेद होने पर भी, निश्चय से तो दोनों एक हैं। निश्चय से उन्हें भी जानता है। आहाहा! ऐसा कब सुना होगा? धन्धे के कारण निवृत्ति ही नहीं ली। आहाहा! सबके लिये है न यह तो। हमारी दुकान में भी थे। पूरे दिन करते और पूरे दिन होली किया करे। मुझे तो कहना पड़ा। (संवत्) १९६४ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? १९६४-६४।

**मुमुक्षु :** बहत्तर वर्ष।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पैसठ? बहत्तर वर्ष, लो ठीक! तब कहना पड़ा कि यह क्या पूरे दिन? बापू! करना पड़े। दुकान में बैठते हैं, धन्धा करते हैं। परन्तु पूरे दिन लोहवाट? यह किया.. यह किया... यह किया... यह किया... उसकी होशियारी बताने के लिये हम, उसमें मैं सामने था। मैंने यह किया, मैंने यह किया, मर जाएगा। मरकर ढोर में जाओगे, कहा! बाबूभाई! उस दिन कहा, हों! सुने, मेरे सामने बोले नहीं। यह भगत है। सामने बोलता नहीं। दूसरा बोलने जाए तो दूसरा उसे कहे - भगत है, ये बोलते होंगे, वह बराबर बोलते हैं। इनके सामने नहीं बोलना।

अरे! बापू! यह तो... आहाहा! यह तो सत् के साधन का अवतार है। यह कहीं भटकने के लिये यह अवतार नहीं है। आहाहा! यह तो भव के अभाव करने का अवतार है। इस अवतार में भव का अभाव नहीं करे... आहाहा! (तो) चौरासी के अवतार में जाकर भटकेगा। कोई शरण नहीं मिलेगी। आहाहा! कीड़ा और कौआ... आहाहा! शूकर और... वे नारणभाई कहते थे। एक पारसी वहाँ था। गाँव में... एक शूकर के पैर को सरिया से बाँधा, पैर बाँधकर सुलगती अग्नि में जीवित डाल दिया। जीवित डालकर जलाया। सुलग गया। नारणभाई कहते थे। आहाहा! ऐसे अवतार! और यह बनिये का अवतार मिला। काहँ अनार्य क्षेत्र में, अनार्य नात, अनार्य नात। ऐसे जीवित शूकर बाँधकर अग्नि में पड़कर भागे तो? आहाहा! नारणभाई कहते थे। डाल दिया, देखा नहीं जाए, सुलगता है। ऐसे अवतार अनन्त बार किये। आहाहा! परन्तु इस सत्ता को संभालने और वह चीज़ क्या, कैसे, किस प्रकार कही जाती है? (इसकी दरकार नहीं की।)

एक ओर ऐसा कहते हैं कि आत्मा पर को जाने, यह व्यवहार कहा जाता है। एक ओर ऐसा कहते हैं कि यह स्व-परप्रकाशक अपना स्वभाव ही है, निश्चय ही है। आहाहा! पर को जानना-ऐसा कहना, वह व्यवहार। क्योंकि पर इसमें आते नहीं और यह वहाँ जाता नहीं। परन्तु अपने जो अनन्त गुण है, उनमें अनन्त गुण को ज्ञान जाने, वह स्व है, निश्चय है। भले ज्ञान से पर है गिनो, तथापि उन्हें यहाँ निश्चय कहने में आया है। आहाहा! एक गुण को जानते हुए अनन्त गुण को जानेगा। आहाहा! अनन्त गुण का जाननेवाला प्रभु आत्मा ज्ञात होगा। ऐसा निश्चय लगे, एकान्त लगे, तह बैठे नहीं, इसलिए मानो यह ऐसी बात होगी? बापू! मार्ग तो यह है। आहाहा! वरना तो ऐसा... आहाहा!

बीस-बीस वर्ष के जवान ऐसे तड़फड़ाहट करके बेचारे खाट में मर जाते हैं। आहाहा! कहा नहीं, उस बहिन का? उसे बेचारी को शीतला निकली थी। 'लाठी' में। आहाहा! दाने-दाने में जीव, ईयल, ईयल ऐसे काट खाये। उसने यहाँ तक कहा—माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में किये नहीं। मुझसे सहन नहीं होता। सोया नहीं जाता, बैठा नहीं जाता। ऐसे फिर तो कीड़े गिरें। अरे रे! ऐसे पाप मैंने इस जिन्दगी में नहीं किये। अठारह वर्ष की उम्र। आहाहा! ऐसे भव अनन्त बार किये हैं, बापू! यह भूल गया है। जरा बाहर की सुविधा देखे, वहाँ सब, हो गया।

**मुमुक्षु :** याद न रखने की आदत है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा!

प्रभु! तू आत्मा है न! तुझमें अनन्त गुण भरे हैं न! पर को जानना, वह व्यवहार कहा, परन्तु एक गुण दूसरे गुण को जाने, वह व्यवहार—ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। पर को जानना, उसे व्यवहार कहा, परन्तु एक गुण दूसरे गुण को जाने, वह व्यवहार नहीं है। वह तो उसकी चीज़ ही है। आहाहा! इसमें क्या न्याय आया?—कि पर को जानने के लिये तुझे उपयोग का भेद करना नहीं पड़ता। उपयोग में विकल्प का भेद करना नहीं पड़ता। आहाहा! सर्व और तू दोनों एक ही है। उसे जानते हुए तुझे उपयोग में राग करना नहीं पड़ता। यह दोनों निश्चय है। आहाहा! दोनों को जानते हुए निर्विकल्प हुआ जाता है। आहाहा! और वह निर्विकल्प अर्थात् रागरहित दशा होना। उस दशा के बिना जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा नहीं है कहीं। आहाहा! इतने उपवास किये, इतना दान दिया,

इतना गौशाला में पचास वर्ष से काम किया। धूल भी काम नहीं किया। मरकर जायेगा कहीं। आहाहा!

इसी प्रकार( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने( श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १९२वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि:—

बन्धच्छेदात्कलय-दतुलं मोक्ष-मक्षयमेत-  
 न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम् ।  
 एकाकार-स्वरस-भरतोऽत्यन्त-गम्भीर-धीरं  
 पूर्णं ज्ञानं ज्वलित-मचले स्वस्य लीनं महिम्नि ॥

आहाहा! कर्मबन्ध के छेदन से अतुल अक्षय ( अविनाशी ) मोक्ष का अनुभव करता हुआ,... आहाहा! आत्मा अपने गुण में रहने पर कर्म का नाश होता है। आहाहा! यहाँ कर्म के नाश की बात की है। कर्मबन्ध के छेदन से अतुल अक्षय... आहाहा! तुलना नहीं, ऐसे अक्षय मोक्ष का अनुभव करता हुआ,... मोक्ष हुआ, वह अक्षय है और अविनाशी है तथा अतुल है। आहाहा! करने का यह है। आहाहा! लम्बी शैय्या करके पड़ा हो, उसे करना क्या? पाँच-पाँच, छह-सात लड़के हों, दो-चार लड़कियाँ हों। अब उन्हें ठिकाने करने में रुकना या धन्धा करना या धर्म में आना? आहाहा! अकेला है, बापू! तुझे करना हो तो कर। मानना हो, वैसा मान। है तो अकेला। आहाहा! तू चाहे तो मान। तू है अकेला, वह दोकला होनेवाला नहीं है। आहाहा!

कर्मबन्ध के छेदन से अतुल अक्षय ( अविनाशी ) मोक्ष का अनुभव करता हुआ, नित्य उद्योतवाली ( जिसका प्रकाश नित्य है ऐसी ) सहज अवस्था जिसकी विकसित हो गयी है... भगवान को। मोक्ष की। ऐसा, एकान्त शुद्ध ( कर्म का मैल न रहने से जो अत्यन्त शुद्ध हुआ है ऐसा ), तथा एकाकार ( एक ज्ञानमात्र आकार से परिणमित ) निजरस की अतिशयता से जो अत्यन्त गम्भीर... ओहोहो! एक-एक शब्द में बहुत गम्भीरता। निजरस की ( आत्मा में-आनन्दरस में ) अतिशयता से जो अत्यन्त गम्भीर और धीर है ऐसा यह पूर्ण ज्ञान जगमगा उठा... अन्दर से जगमगा उठा। आहाहा! दीपक की भाँति दिखता नहीं। दीपक दिखे जगमग में यह दिखता नहीं। देखनेवाला है स्वयं और देखनेवाले को देखता नहीं। वह तो यह देखता है कि यह दीपक है और यह है। देखनेवाले को देखता नहीं? चीज़ दिखती है, वहाँ से हटता नहीं। आहाहा! यह कहते हैं।

एकाकार ( एक ज्ञानमात्र आकार से परिणमित ) निजरस की अतिशयता से जो अत्यन्त गम्भीर और धीर है ऐसा यह पूर्ण ज्ञान जगमगा उठा ( सर्वथा शुद्ध आत्मद्रव्य जाज्वल्यमान प्रगट हुआ ), अपनी अचल महिमा में लीन हुआ । अपने स्वरूप में लीन होने से अपनी मोक्षदशा, अचल दशा में लीन हुआ । इसका नाम मोक्ष । करना हो तो यह करना है ।

( श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव ! )